अमर उजाला

शब्द सम्मान

2018

हिये तराजू तौलि के...

शब्दों की महान परंपरा के सतत सम्मान और श्रेष्ठतम सृजन को रेखांकित करने के अनिवार्य दायित्व के निर्वहन की दिशा में अमर उजाला परिवार ने 'शब्द सम्मान' के रूप में छः अलंकरणों की स्थापना का निर्णय लिया है। इसके तहत अमर उजाला फाउंडेशन की ओर से प्रतिवर्ष साहित्य में दो सर्वोच्च सम्मान, एक हिंदी और एक किसी अन्य भारतीय भाषा में सतत, विशिष्ट रचनात्मक योगदान के लिए पांच-पांच लाख रुपये की राशि के साथ अर्पित किए जाएंगे।

इसके साथ ही, एक अलंकरण हिंदी में किसी भी लेखक की पहली कृति के लिए होगा, तीन अलंकरण कथा, कविता तथा गैर-कथा श्रेणियों में वर्ष की श्रेष्ठ कृतियों को समर्पित होंगे तथा एक विशेष अलंकरण भारतीय भाषाओं में पुल बनाने वाली अनुवाद परंपरा के लिए है, जिसके तहत हिंदी सहित किसी भी भारतीय भाषा से किसी भी अन्य भारतीय भाषा में परस्पर अनुवाद के लिए श्रेष्ठ कृतिकार को सम्मानित किया जाएगा। ये सम्मान एक-एक लाख रुपये राशि के साथ अर्पित किए जाएंगे।

२०१८ के अलंकरणों के साथ इस उपक्रम का शुभारंभ हो रहा है। उन शब्दशिल्पियों के प्रति हमारा कृतज्ञता भरा अभिवादन, जिन्होंने साहित्य को समृद्ध किया और अमर उजाला के इस आयोजन को सार्थकता दी है।

बधाई और नमन!

राजुल माहेश्वरी
प्रबंध निदेशक
अमर उजाला समूह

भाषा की शक्ति उसके साहित्य से न सिर्फ समृद्ध होती है बल्कि उससे सामाजिक विवेक सांस्कृतिक उज्ज्वलता और मानवीय मूल्यों का प्रकाश भी प्राप्त करती है। हिंदी और समस्त भारतीय भाषाओं का साहित्य हमारे सामूहिक स्वप्न को प्रतिबिंबित करता है। साहित्य में संघर्ष और उपलब्धि की जो विलक्षण परंपरा है उसका सतत सम्मान हमारा अनिवार्य दायित्व है। प्रथम अमर उजाला शब्द सम्मान के लिए पांच मूर्धन्य साहित्यकारों - सम्माननीय ज्ञानरंजन जी, विश्वनाथ त्रिपाठी जी, मंगलेश डबराल जी, प्रयाग शुक्ल जी और सुधीश पचौरी जी ने हमारे आग्रह का मान रखा और इस तरह उनकी उपस्थिति से यह उपक्रम अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर सका है। उनके प्रति कृतज्ञता छोटा शब्द होगा। वे हमेशा हमारी ऊर्जा का केंद्र रहेंगे।

आकाशदीप-नामवर जी और गिरीश कारनाड जी, के साथ पांच युवा साहित्यकार भारतीय भाषाओं के सामर्थ्य के आलोक में दीप्तिमान हैं। बधाई! आभार!! कृतज्ञता और सातत्य की कामना के साथ सभी का विनम्र अभिवादन...

यशवंत व्यास
समूह सलाहकार
अमर उजाला

अमर उजाला शब्द सम्मान 2018

निर्णायक मंडल

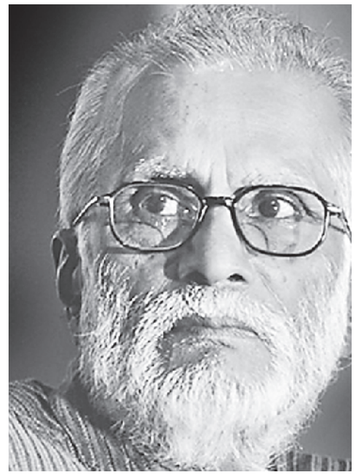

ज्ञानरंजन
प्रख्यात कथाकार

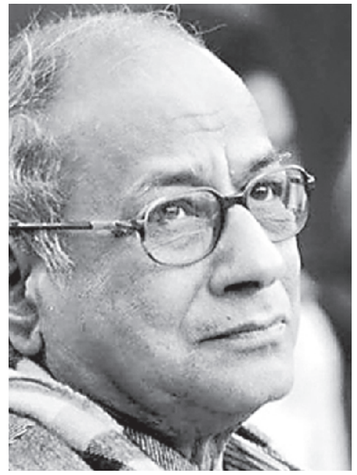

मंगलेश डबराल
विख्यात कवि

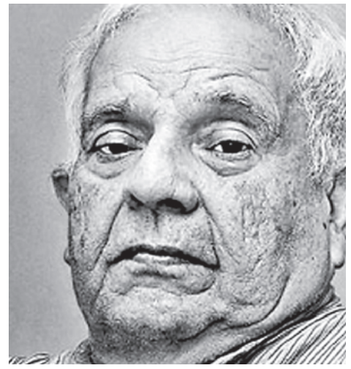

विश्वनाथ त्रिपाठी
वरिष्ठ आलोचक

प्रयाग शुक्ल
प्रसिद्ध समीक्षक-कवि

सुधीश पचौरी
सुप्रसिद्ध आलोचक

जिसने शब्दों को जान लिया और पहचान लिया, वह इस लोक और परलोक, दोनों जगह सुखी है...

सर्वोच्च सम्मान
आकाशदीप

जैसे हम हैं, वैसे ही रहें...

कहने को तो मैं भी प्रेमचंद की तरह कह सकता हूं कि मेरा जीवन सरल सपाट है। उसमें न ऊंचे पहा□ हैं, न घाटियां हैं। वह समतल मैदान है। लेकिन औरों की तरह मैं भी जानता हूं कि प्रेमचंद का जीवन सरल सपाट नहीं था। अपने जीवन के बारे में भी मैं नहीं कह सकता कि यह सरल सपाट है। भले ही इसमें ब□ ऊंचे पहाड़ न हों, बड़ी गहरी घाटियां न हों। मैंने जिन्दगी में बहुत जोखिम न उठाए हों, लेकिन जीवन सपाट न रहा।

मैंने कभी अपने गुरुदेव हजारी प्रसाद द्विवेदी से पूछा था, 'सबसे बड़ा दुख क्या है?' बोले, 'न समझा जाना।' मैंने फिर पूछा, सबसे बड़ा सुख? वह बोले, 'ठीक उलटा! समझा जाना।' इसी समझा जाना और न समझ में आना पर मेरी जिंदगी टिकी रही।

साहित्य को लेकर मैं एक ही सिद्धांत मानता रहा हूं। साहित्य में 'सह' शब्द है। साहित्य में 'शब्द' भी सुंदर हो और 'अर्थ' भी सुंदर हो तब साहित्य होता है। 'सह' भाव साहित्य का धर्म है। इसलिए वही साहित्य श्रेष्ठ होगा जो साहित्य धर्म का पालन करेगा।

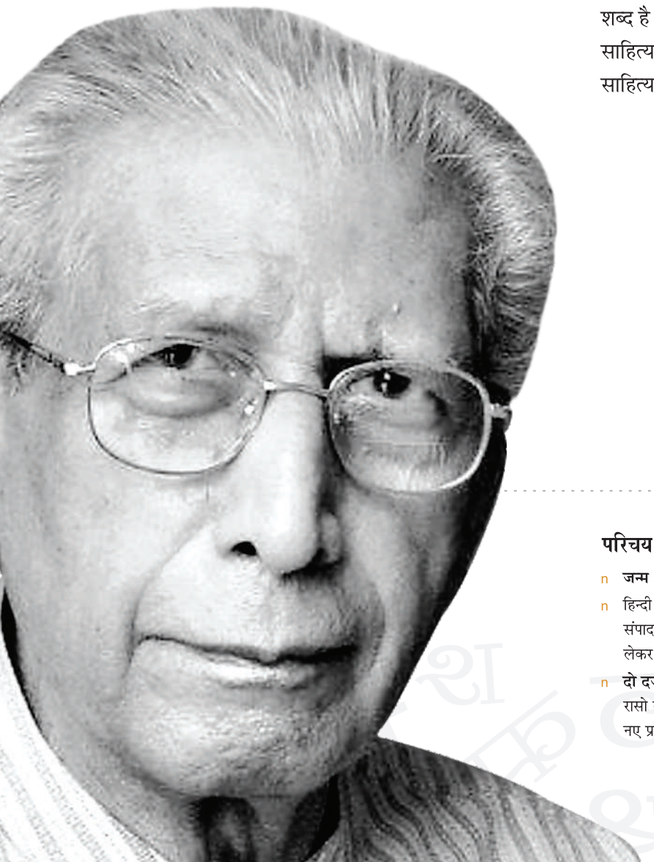

नामवर सिंह
प्रख्यात आलोचक और प्राध्यापक

परिचय

- **जन्म :** २८ जुलाई १९२६, जीयनपुर, चंदौली, उत्तरप्रदेश
- हिन्दी में आलोचना के रचना पुरुष के रूप में ख्यात। शीर्षस्थ शोधकार-समालोचक, निबंधकार, संपादक। मूर्धन्य उपन्यास लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्य। हिन्दी में अपभ्रंश साहित्य से लेकर समसामयिक साहित्य तक जुड़ाव।
- **दो दर्जन से ज्यादा किताबें :** बाकलम खुद, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृथ्वीराज रासो की भाषा, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, छायावाद, इतिहास और आलोचना और कविता के नए प्रतिमान आदि। इनके ऊपर केंद्रित साहित्य की बड़ी लंबी परंपरा और सूची। ढेर सारे पुरस्कार।

अगर आप गड़बड़ियों, अव्यवस्थाओं और कोलाहल के बीच भ्रम को नहीं समझ सकते, तो आप नाटकों में हो ही नहीं सकते।

सर्वोच्च सम्मान
आकाशदीप

काश! मैं एक जादूगर होता...

मैं भाग्यशाली रहा कि विविध भाषा संस्कृति में पला-बढ़ा। यही कारण है कि मैं अच्छी हिंदी बोल सकता हूं। मैं कवि बनना चाहता था। मेरी थियेटर में भी रुचि थी, लेकिन मेरा नाटक लेखक बनने का कोई इरादा नहीं था। रोड्स स्कॉलरशिप मिलने के बाद मैं लंदन पहुंचा। उस समय एक धारणा थी कि यदि मैं विदेश जाउंगा, तो मैं विदेश की किसी गोरी मेम से शादी कर लूंगा। तभी एक दिन मेरे मन में ययाति लिखने का विचार आया। इसके बाद जिंदगी में कई मोड़ आए।

नाटकों के लेखन-निर्देशन, अभिनय के अलावा फिल्म निर्देशन में भी आया। जादूगरी में भी मेरी दिलचस्पी थी। जादू के शो चाव से देखता था। लेकिन जादू नहीं कर पाया। फिर मैंने मुंबई छोड़ा और वापस आ गया, क्योंकि मेरी पत्नी कहती थी कि बहुत हो गया हिंदी सिनेमा। मैं भाग्यशाली हूं कि मुझे आज भी ऑफर आते हैं।

मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज नाटक था। आज भी है। फिल्मों से पैसा कमाया। कभी आत्मसंतुष्टि नहीं हुई। मेरे सभी नाटक कन्नड़ भाषा में हैं। हिंदी और कन्नड़ ने मुझे बनाए रखा है।

गिरीश कारनाड
नाटककार, फिल्म निर्देशक और कलाकार

परिचय

- **जन्म :** १९ मई १९३८, माथेरान (महाराष्ट्र)
- **प्रमुख कृतियां :** ययाति, तुगलक, अग्नि मत्तु माले, ओदकलु बिम्ब, अंजुमल्लिगे, मा निषाद, टिप्पुविन कनसुगलु, हित्तिन हुंज, नागमंडल, हयवदन
- **साहित्य के क्षेत्र में पुरस्कार :** संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार, पद्मश्री, पद्मभूषण, कन्नड़ साहित्य अकादेमी पुरस्कार, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, कालीदास सम्मान, टाटा लिटरेचर लाइव लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार।
- **सिनेमा के क्षेत्र में भी ढेर सारे पुरस्कार**

श्रेष्ठ कृति सम्मान

छाप कथा

मनीष वैद्य

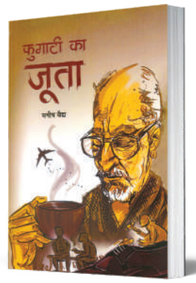

फुगाटी का जूता

कहानियों में गहरा सरोकार है और इसका कथाकार जागरूक प्राणी है...

निर्णायक वक्तव्य

ज्ञानरंजन
प्रख्यात कथाकार

अमर उजाला की शब्द सम्मान योजना की समूल प्रस्तावना का मैं अभिवादन करता हूं। कथा वर्ग के लिए शब्द सम्मान (भाषा) की प्रस्तावना के अंतर्गत जो प्रविष्टियां स्क्रीन करने के बाद प्राप्त हुई हैं उनका मूल्यांकन भी चुनौतीपूर्ण रहा है। अंतिम रूप से तीन-चार कथाकारों की नामावली जो छांट कर मैं तैयार कर सका, उसमें सर्वश्रेष्ठ तय करना सरल नहीं था, क्योंकि ये नाम कभी आगे-पीछे होते हैं, कभी समांतर, तो कभी जबदस्त बराबरी करते हुए होते हैं। अंततः एक का चयन मैंने अपने विवेक से किया। एक कृति के पीछे कभी नूतनता आगे बढ़ती है, कभी जीवन भर की वरिष्ठ भूमिका। हम किसी भी चीज को बीन कर फेंक नहीं सकते।

कहानी अपनी धुर पारंपरिक परिपाटियों को विखंडित करते हुए एक नई बुनावट और शिल्प में ढल रही है। इसके पीछे बेचैनी, प्रयोग और नूतनता के आग्रह हैं। पर बात कुछ विश्वसनीय रूप से ढल रही हो, ऐसा नहीं। नए रचनाकार 2018 तक बड़ी संख्या में आ गए हैं। इन नयों और नयों के बीच भी कथा रचना में पर्याप्त विभाजन दिखता है। कुछ ने परंपरा को ही ताज़गी देने की रचनात्मक कोशिश की है और कुछ अपने नए प्रकाशकों की जरूरतों के आगे कहानी को नए गद्य में बदल रहे हैं। एक अच्छी-खासी सूची बनती है। कई नए रचनाकार रूमानी गद्य के टुकड़ों में कहानी को तब्दील कर रहे हैं। पर चेखव, प्रेमचंद को तोड़ कर एक नमूना प्रकट करना आसान नहीं है। ठस कहानीपन को तोड़ने के लिए ऊबे हुए लोग बिना कहानीपन (नई) के कुछ करतब नहीं कर सकते। आप प्रयोग करें पर कहानी से बूढ़े, बच्चे, हाशिये के लोग, अबोध स्त्रियां, आम और दुर्बल आवाजें आना अनिवार्य हैं। चेखव की एक कहानी में जिस व्यक्ति की पत्नी अस्पताल के रास्ते पर है, पति जो दुराचारी, शराबी और बिगड़ैल पात्र है, मृत्यु के रास्ते पर संकल्प करता है कि अब वह नया जीवन, नैतिक त्याग, सेवा से भरा, पत्नी के साथ बिताएगा। वह अपने गुनाहों को धो डालेगा। और रास्ते में बेजोड़ घटना घटती है, पत्नी की मृत्यु हो जाती है। भावुकता धरी रह जाती है, नैतिकताएं धरी रह जाती हैं। प्रकृति अपराधी जैसे पति मनुष्य के भावावेग के आगे बहुत क्रूर है। ये चेखव हैं। कहानी मरी नहीं/कहानी विकल्प नहीं है। यह फैशनेबल हंता नहीं है। वह कौतुक, प्ले और जीवन के खेल को खेल रही होती है। जो लोग परंपरा से आते हैं, परंपरा को तोड़ते हैं और परंपरा को अग्रसर करते हैं, वे हमारे लिए विचारणीय हैं।

अगर कहानी का नैरेटर अपने पात्रों से, अपनी कथामूर्ति से झटका खाता है, तो वह कला का वैभव होगा। हमारे ही पात्र हमें अवाक कर देते हैं, हमारी शिलाओं को चूर-चूर कर देते हैं, एक जादू हो जाता है। वे कहानीकार, वे नैरेटर जो मजबूत होते हैं। अहंकार से दीप्त हैं, तयशुदा लीपापोती करते हैं, वे बड़े नैरेटर नहीं होते। उनको तो कहानी लिखते हुए, हाथ से तोते उड़ जाने जैसे अनुभव होना चाहिए। हम कभी अपने ही पात्रों के खिलाफ हो जाते हैं। कभी समर्थन में आ जाते हैं। बड़ी बेबसी होती है। आसान नहीं है रचना कहानी।

कहानियों को पढ़ते हुए मैं अपने को एक खुले संसार में छोड़ देता हूं। पूर्वाग्रह नहीं एक आवेग जीवित रहता है। आलोचना को मैं एक पंगु और अधूरी विधा मानता हूं, क्योंकि आलोचना कभी भी बड़े रचनाकारों की नब्ज नहीं पकड़ पाती। बड़े कथाकारों का एक वाक्य क्या कहर ढा सकता है, नया रचनात्मक उन्मेष ला सकता है, क्या जादू दिया सकता है- वह जानना आलोचना के वश की बात नहीं है।

सभी विचारकों ने कहानी की लंबी परंपरा का उल्लेख किया है। किसी भी कथानक की पूर्णता, उसका ठाठ कथाकार के जीवन संबंधी नजरिए से जुड़ा है। इसीलिए फुटकर कहानीकार जल्दी दिवंगत हो जाते हैं। इसी पृष्ठभूमि में मेरे समक्ष 'छाप' की कृतियां हैं। जाहिर है, यह कठिन कसौटी है।

और इन सबके बीच **फुगाटी का जूता (मनीष वैद्य) –** मेरी समझ और राय में प्रस्तावित कृतियों में सर्वोत्तम 'छाप' वाली कहानियां हैं। क्यों? ये कहानियां नूतन, कल्पनाशील, व्यंग्य और भाषा शिल्प के साथ एक तरह का मास्टर स्ट्रोक हैं। इसमें देश और समाज के लिए आवाजें हैं। हुनरमंद कारीगरों, छोटे रोजगार वाले और कारपोरेट की धूम सभी का कहानियों में दायरा है। इनका कैनवस बड़ा है और ये मनुष्यता को बचाने का छोटा-सा प्रयास कर रही हैं। लेखक विकास की मौजूद अवधारणा का क्रिटिक है। इन कहानियों की वस्तु समग्र है और अगर एक पहलू कमजोर है तो दूसरा पहलू उसकी क्षतिपूर्ति करता है। यह कहानी का खेल है, कौशल है, यही उसकी कीमत है। कहानियों में गहरा सरोकार है और इसका कथाकार जागरूक प्राणी है।

मैं इस नए कथाकार मनीष वैद्य की कहानियों से बेहद प्रसन्न और प्रभावित हूं। मैं इन्हें 'शब्द सम्मान' (छाप) के अंतर्गत सर्वोत्तम और मुकम्मल मानने के साथ सम्मानित करने की अनुशंसा करता हूं।

ज्ञानरंजन

अमर उजाला शब्द सम्मान 2018

कर्ज तो चुकाना होगा

'विश्वास करो, मैंने पूरी ईमानदारी के साथ कहा था कि हम सबका जीवन एक कड़वाहट है, एक अनधिकार चेष्टा है जीने की। मैंने अपने आप को ही उस अनाधिकृत स्थिति से मुक्त करने के लिए ऐसा लिखा था। मैं स्वयं ही रौक्रेंटिन (उनकी कृति नौसिया का नायक) था। मैंने बिना किसी अनिश्चय के अपने ही जीवन की बुनावट व्यक्त करने की कोशिश की थी।' यह बात ज्यां पाल सार्त्र ने आत्मकथात्मक टिप्पणी में कही है। तो क्या अपनी हर कहानी में लेखक अपने ही जीवन को तरह-तरह से रूपायित करता है। क्या उसके किरदार अपने ही जीवन के बीते पन्नों से उभरकर आते हैं और क्या वह उन्हें महज धो-चमकाकर नए और रोचक अंदाज में हमारे सामने रखता है। मुझे लगता है हम अपने को ही उलट-पुलट कर लिखते रहते हैं।

वह एक छोटा-सा गांव था और बहुत भीतर। चारकोल की सडक से 25 किमी भीतर। जहां बारिश में पहुंचने के लिए घोड़े की सवारी करनी होती थी। बारिशभर यह पूरी दुनिया से कटे किसी टापू की तरह रहता। तब बिजली भी कहां थी। मेरा पूरा बचपन संसाधनविहीन लेकिन आत्मीयता से भरे-पूरे गांव में हुआ, यहीं पढाई हुई, दोस्त बने, छीन-झपट हुई, लड़ाइयां हुईं, अच्छे-बुरे का ख्याल बना, जहां मैंने जी तोड़ मेहनत करने पर भी मुस्कुराते मजदूर देखे, अपनी फटेहाली में भी जिंदादिल किसान देखे, दिन-रात घरों और खेतों में खटती औरतें देखीं। तमाम त्रासदियों के बाद भी उनकी उमंग, भोलापन, सच्चाई, सामूहिकता का उत्सव, प्रकृति के प्रति समर्पण और जिन्दगी के प्रति उनका लगाव सिर्फ उनके भीतर तक झांककर ही नहीं देखा, बल्कि आत्मसात किया। उन्होंने मेरी संवेदना को आकार दिया है, तो वे किरदार मेरी कहानियों से अछूते कैसे रह सकते हैं। मेहनतकश लोग और उनकी फाकामस्ती वाकई मन मोह लेती। जब उन्हें जानता था और उनके बीच रहता था तो सोचा नहीं था कि कभी इनके दु:ख को अपनी कहानियों के जरिए दुनिया के सामने ला सकूंगा, लेकिन आज जब कुछ कच्ची-पक्की कहानियां लिख पाने में खुद को सक्षम पाता हूं, तो सबसे पहले वे ही लोग याद आते हैं। उनका पारदर्शी जीवन संघर्ष मेरे लिए तब भी किसी विस्मय से कम नहीं था, तो आज भी विस्मय ही है।

वे लोग बार-बार लौटकर आते हैं और मैं उन्हें फिर-फिर गाता हूं। वे मुझे झंझोड़कर कहते हैं कि हमें और हमारी तकलीफों को तुम स्वर नहीं दोगे तो कौन देगा? यह मेरे ऊपर उनका कर्ज है, मुझे इसे चुकाना ही होगा।

मनीष वैद्य

- 16 अगस्त 1970 को धार (म.प्र.) में जन्मे मनीष एम.ए, एम.फिल (हिंदी साहित्य) हैं। राहुल सांकृत्यायन पर शोध किया।
- हंस, पहल, कथादेश, वागर्थ, पाखी, कथाक्रम, इन्द्रप्रस्थ भारती, अकार, बहुवचन, लमही, पूर्वग्रह, परिकथा, कथाबिम्ब, वीणा, साक्षात्कार, आउटलुक, पुनर्नवा, अक्षरपर्व, युद्धरत आम आदमी सहित महत्वपूर्ण सहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में 70 से ज्यादा कहानियां प्रकाशित। तीन सौ से ज्यादा आलेख प्रकाशित।
- **कहानी संग्रह :** टुकड़े-टुकड़े धूप (2013), फुगाटी का जूता (2017)
- **पुरस्कार :** प्रेमचन्द सृजनपीठ उज्जैन से सम्मान, यशवंत अरगरे सकारात्मक पत्रकारिता सम्मान (2017), प्रतिलिपि सम्मान (2018), वागीश्वरी सम्मान (2018)
- **संप्रति :** पत्रकारिता और सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव
- **संपर्क :** 11 ए, मुखर्जी नगर, पायोनियर स्कूल चौराहा, देवास (मप्र)-455001, **मोबाइल –** 9826013806 • manishvaidyav1970@gmail.com

श्रेष्ठ कृति सम्मान

छाप कविता

आर. चेतनक्रांति

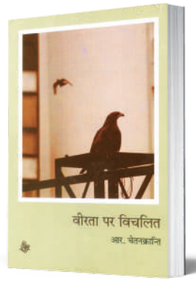

वीरता पर विचलित

यह एक जरूरी और हाल के वर्षों का अत्यंत महत्वपूर्ण संग्रह है...

निर्णायक वक्तव्य

मंगलेश डबराल
विख्यात कवि

'छाप' अलंकरण के लिए विचारार्थ मिले कविता संग्रहों के आरंभिक पाठ के बाद अंतिम रूप से चुने गए संग्रहों को मैंने दोबारा पढ़ा और मुझे लगा कि कुछ रचनाकारों में एक मौलिक संवेदना, अपने समय को देखने-महसूस करने का निजी ढंग और कविता लिखने की अलग और अपनी प्रविधियां हैं और वे यथार्थ के विभिन्न संस्तरों को छूने-पकड़ने और दर्ज करने में कम या ज्यादा सफल हुए हैं और कुछ कवियों में संभावनाओं के नए द्वार खुलते दिखाई देते हैं।

कहीं विश्व कविता और विचार का अध्ययन दिखता है और अपने अनुभवों को मेटा-यथार्थ में बदलने की खूबी नजर आती है। लेकिन यह भी है कि वहां अक्सर एक अनुभव के पूरा होने से पहले ही कविता दूसरे अनुभव को छूने लगती है। बहुत सी कविताओं में बिंबों की बहुलता भी फोकस नहीं बनने देती। वे जिस समय लिखी गई हैं, वह समय कहीं कविता के पीछे चला जाता है।

कहीं कविताएं सरल, सीधी और कुछ उदात्तता से भरपूर हैं और उनका वैचारिक-ऐतिहासिक बोध सही है, लेकिन वे यथार्थ के नए आयामों को नहीं देख पातीं और उनका कथ्य भी जाना-पहचाना लगता है। वे पठनीय हैं, लेकिन कोई नया अनुभव नहीं दे पातीं।

कुछ कविताओं में समकालीन यथार्थ की छवियां हैं, लेकिन उसकी पेचीदगियों और बारीकियों का अभाव है। संवेदनात्मक सघनता और गहराई की कुछ कमी के कारण बहुत सी कविताएं अपनी ही धुरी पर घूमती या कदमताल करती हुई दिखाई देती हैं।

कोई संग्रह अपने ग्राम्य और कस्बाई अनुभवों-बिम्बों की वजह से आकर्षित करता है। लेकिन कथ्य और अनुभव के लिहाज से उसकी कविताएं अनुभव की गहराइयों में नहीं जा पातीं और कोई नया आयाम नहीं खोल पातीं।

कहीं ऐसा हुआ है कि अक्सर कविताएं जिस बिंदु या दृश्य से शुरू होती हैं, वहीं रुकी हुई रह जाती हैं।

किसी संग्रह में विरोध, विद्रोह, सवाल आदि जरूर हैं, कथ्य के लिहाज से भी वे सही हैं, लेकिन वे कविताएं कवि के अनुभवों का कोई विश्वसनीय चेहरा नहीं गढ़ पातीं और उनका शिल्प भी खासा सरलीकृत और कमजोर दिखता है।

इन सबमें उभर कर आता है 'वीरता पर विचलित'।

'वीरता पर विचलित' चेतनक्रांति का दूसरा संग्रह है और हमारे समय की सच्चाइयों, उसके विरूपों और विडंबनाओं की गहरे व्यंग्य, करुणा और विराग के साथ पड़ताल करता है। जैसा कि नाम से जाहिर है, संग्रह की ज्यादातर कविताएं ताकत, वीरता और सफलता की प्रक्रियाओं और समाज में दिखने वाली उनकी शक्लों की जांच-परख करती हैं, उन पर शिद्दत के साथ टिप्पणियां करती हैं। उनके माध्यम से हम आज के शहरी और कस्बाई समाज का हाल जान सकते हैं, जो विचलित करने और सोचने के लिए बाध्य करने वाला है। ये कविताएं ताकतवर के बरक्स कमजोर, मर्दों के बरक्स औरतों, बड़ी चीजों के बरक्स मामूली चीजों, महानगरों के बरक्स कस्बों की मासूम संवेदनाओं की कविताएं हैं। चेतनक्रांति ने कई तरह की संरचनाओं के साथ ही मुश्किल छंदों और तुकों के दिलचस्प और सार्थक प्रयोग किए हैं, जिन्हें पढ़ना बिना छंद की कविता के एक इस युग में सुखद लगता है। उनके छंद कहीं नागार्जुन, तो कहीं नजीर अकबराबादी जैसे बड़े कवियों की कविता याद दिलाते हैं। यह एक जरूरी और हाल के वर्षों का अत्यंत महत्वपूर्ण संग्रह है।

आर. चेतनक्रांति का कविता संग्रह 'वीरता पर विचलित' सभी पुस्तकों में सबसे परिपक्व, ठोस, अनुभव संपन्न और सीधे अपने समय की शिद्दत से पहचान करने वाला संग्रह है। जिसकी अधिकतर कविताएं पाठक को चकित करती हैं, झकझोरती हैं, रोकती हैं और गंभीर ढंग से सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। वे हमें यह बताती हैं कि अपने समय को इस तरह भी देखा जा सकता है। बहुत सी कविताओं की छंद-योजना और बयां करने का अंदाज भी आकर्षक है और चेतनक्रांति को नई पीढ़ी में सबसे अधिक छंद-सजग और छंद को एक औजार की तरह इस्तेमाल करने वाला कवि भी बनाती हैं। मेरी नजर में 'वीरता पर विचलित' निश्चय ही 'छाप' अलंकरण दिए जाने के योग्य कृति है।

अमर उजाला शब्द सम्मान 2018

एक मौन की चीख

युद्ध करने वाला बस युद्ध करेगा
युद्ध से भागने वाला
जाएगा, जाकर बसाएगा एक शहर

युद्ध करने वाला युद्ध करेगा
युद्ध से आंख बचाकर जाने वाला
लेकर आएगा पता
एक सुंदर घाटी का

युद्ध करने वाला युद्ध करेगा
युद्ध को पीठ दिखाने वाला, पीछे पलटकर देखेगा
जीवित, हहराता समुद्र मनुष्यता का।

कवि के रूप में स्वयं को समाज के सामने प्रस्तुत करते हुए जैसी हिचक पहली कविता लिखते समय थी, वैसी ही आज भी है। आज भी लगता है कि कविता लिखकर जो समय खर्च करता हूं, वह मैंने चुराया है। प्रशंसा और शाबासी आज भी आत्म-संदेह से भर देते हैं, लेकिन लिखना अपने होने और बचने के लिए तब भी उतना ही जरूरी लगा था और अब भी उतना ही 'अनिवार्य' लगता है। एक बिंदु आता है, जब सिर्फ यही एक राह होती है। समय जैसे हमारी संवेदना और सहन-शक्ति की परीक्षा लेता है, और मौन से मौन व्यक्ति को भी कभी न कभी चीखने पर बाध्य कर देता है। वैसी ही एक चीख कविता है। वह कला सबसे पहले नहीं है। कुछ आता है जिसे कहना ही होता है। यह कहनेवाले के अपने व्यक्तित्व की लय है जो कला होकर उसके साथ आती है। बाकी दुःख है और वह उतना ही बड़ा और अविभाज्य है, जितना आकाश और धरती। हम उसे उसी तरह अपनी-अपनी परिधि और अपने-अपने शिल्प में जीते हैं, जैसे धरती को, हवा को, आसमान और पानी को।

आर. चेतनक्रांति

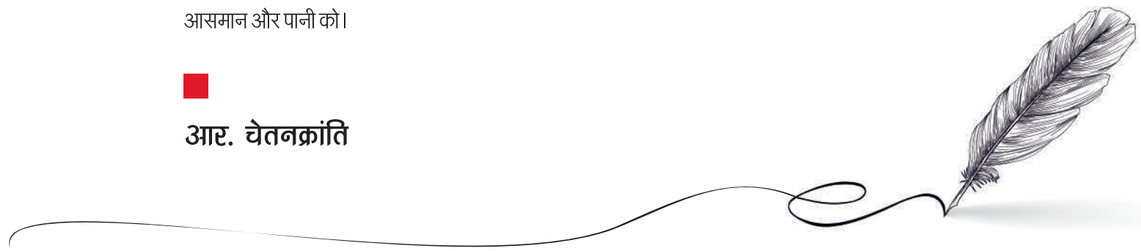

- उत्तर प्रदेश के जिला सहारनपुर के एक गांव उमरी कलां में 2 दिसम्बर, 1968 को जन्म। प्राथमिक और उसके बाद इंटरमीडिएट तक की पढाई गांव की पाठशाला और पास के गांव अम्बेहटा चांद के जनता इंटर कॉलेज में हुई। स्नातक और स्नातकोत्तर सहारनपुर के जे.वी. जैन कालेज (चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ) से किया। इसके बाद पत्रकारिता में। लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं के लिए स्वतंत्र लेखन। फिर कुछ समय अमर उजाला कारोबार में बतौर उपसंपादक काम किया। 1999 से अब तक राजकमल प्रकाशन समूह से जुड़े हैं। साथ में छिटपुट लेखन और अनुवाद भी।
- कविता लिखने का सिलसिला बचपन से शुरू हो गया था। पहली कविता हाईस्कूल के दौरान लिखी 1984-85 में, लेकिन छपकर लोगों के सामने 1998-99 में आई। पहला संग्रह 2004 में 'शोकनाच', और दूसरा 2017 में—'वीरता पर विचलित'।
- 'सीलमपुर की लडकियां' कविता के लिए 2001 में भारतभूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार। एक और कविता 'क्या' को 2010 में राजस्थान पत्रिका ने वर्ष की अच्छी कविता के रूप में चिह्नित किया। 2011 में 'शोकनाच' पर 'स्पंदन' (भोपाल) का कृति सम्मान।

श्रेष्ठ कृति सम्मान

छाप कथेतर

अनिल यादव

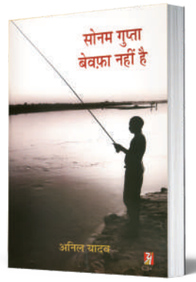

सोनम गुप्ता बेवफा नहीं है

शब्द प्रयोगी क्षमता या अर्थ–अन्वेषण की क्षमता जो स्थितियों के अभूतपूर्व संबोधन का साथ दे सके...

निर्णायक वक्तव्य

विश्वनाथ त्रिपाठी
वरिष्ठ आलोचक

जो पुस्तकें मुझे पढ़ने को मिलीं, उन्हें पढ़कर मुझे हिंदी गद्य के विकास और नए तेवर का पता चला। आधुनिक हिंदी गद्य- मेरा मतलब लेखकों की नई पीढ़ी द्वारा लिखा जा रहा गद्य, भावुकता का बोझ उतार चुका है। गद्य गद्यात्मकता से समृद्ध हो रहा है। शरीर जैसे अपनी अतिरिक्त अनावश्यक चर्बी उतार सुंदर सुदृढ़ होता है, वैसे ही बहुत कुछ और यह सब नए गद्य रूपों में हो रहा है - ब्लॉग, फेसबुक, संस्मरण, समीक्षा, रपट, टिप्पणी आदि - जिसे कथेतर गद्य कहा जाने लगा है। हमारे समय में संस्मरण लोकप्रिय गद्य रूप क्यों हो गया है? इसकी पड़ताल करने की जरूरत है। तकनीकी विकास हमारे भाव प्रकाशन को संकीर्ण ही नहीं करता, वह उसे नई विधि भी देता है और उसका उपयोग केवल शोषण के लिए नहीं, शोषण के विरुद्ध भी हो सकता है। वह गद्य को नई भंगिमा भी दे सकता है।

मुझे लगता है कि कथेतर गद्य जीवन कथा से रहित नहीं हो सकता, उसका रूप बदल जाए, वह अलग बात है और समग्रतः हिंदी गद्य रूपों को अधिक जनतांत्रिक बनाने में तकनीक के विकास का हाथ है और इसमें उदाहरणस्वरूप मैं अनिल यादव की पुस्तक 'सोनम गुप्ता बेवफा नहीं है' को प्रस्तुत कर सकता हूं, जिसे 'छाप' सम्मान के योग्य समझता हूं। 272 पृष्ठों की यह पुस्तक सात खंडों की हैं। कहने को सात खंड हैं, लेकिन उन सब में अन्तर्व्यापी विषय-क्षेत्र एक है और वह है इतिहास की धार पर बनता-बिगड़ता हुआ भारतीय समाज - जिस तकनीकी विकास के गद्य-रूपों पर प्रभाव की बात अभी की थी, उसमें बिना, एक दो पृष्ठों की टिप्पणियों में इस महादेश में हिंदी समाज की सांप्रतिक ऐतिहासिक धार को समेट लेना संभव नहीं था। लेकिन बात केवल रूप की नहीं है - रचनाकार के पास अन्तर्भेदी दृष्टि भी होनी चाहिए, जो ऊबड़-खाबड़ दिखलाई पड़ने वाली स्थितियों और चरित्रों के मन को देख सके। रचनात्मक दृष्टि का देखना सिर्फ देखना नहीं होता, वह मानवीय निर्मिति करना ही होता है। रचनात्मक दृष्टि, दृष्टि ही नहीं होती, इसमें करुणा या प्रकाश होता है। निराला ने उसे 'अंतस की शिल्प धार' कहा है।

अनिल यादव पक्षधर-शोषित वंचित या उपेक्षित के पक्षधर रचनाकार हैं - रचनात्मकता पक्षपाती होती है, किंतु एकांगी नहीं होती। अगर एकांगी हो, तो रचना का विकास ही नहीं हो सकता।

संक्षिप्त कलेवर में वस्तु के अवकाश को बांध लेना अनिल यादव की क्षमता है। इसके साथ शब्द प्रयोगी क्षमता या अर्थ-अन्वेषण की क्षमता, जो स्थितियों के अभूतपूर्व संबोधन का साथ दे सके। तकनीक विकास और विनाश दोनों का सूचक है। नई तकनीक पुरानी को गतिहीन बनाकर यानी बेकार बनाकर आती है। बेकार का मतलब बेरोजगार होना होता है। नई तकनीक ऐसी हो जिससे बेकारी, बेरोजगारी न बढ़े, बेरोजगारी समाज में अनगिनत अभिशाप रूपों, विकृतियों को जन्म देती है। अनिल यादव डिजिटल इंडिया के टाइपराइटर में लिखते हैं - 'तकनीक चाहे जितनी तेजी दिखा ले लेकिन अनपढ़ और दुष्ट लोगों की समस्याएं धीरज से नहीं सुन सकती, उनको दिलासा नहीं दे सकती। उनकी यादों, लंबी सांसों और आंखों की नमी को लिख नहीं सकती और यह बूढ़े सटाइरिस्ट का चुनाव नहीं, मजबूरी है।'

इस कृति में बढ़ोतरी की आपाधापी में उपेक्षित वंचितों को केंद्र में रखा गया है। उपभोक्ता संस्कृति की फूहड़ विज्ञापनी मानसिकता को उघाड़ा गया है। सामाजिक विषमताओं, कुरुपताओं, अंधविश्वासों की हिंसक क्रूरताओं को जाहिर किया गया है। भद्रलोक की निगाह में न पड़ने वाले अति सामान्य व्यक्तियों और उनकी स्थितियों को सामने लाकर रचनात्मक उत्तरदायित्व का निर्वाह किया गया है। इसे अलग से कहने की जरूरत नहीं कि इस रचना में साहित्यिकता और पत्रकारिता का सुखद संयोग है।

अमर उजाला शब्द सम्मान 2018

मेरे मन में एक लंबी अंधेरी सुरंग है

मैं लेखक होने के रास्ते में हूं। उस मोड़ पर जहां सारा रोमांस हवा हो जाता है। एक सतत बेचैनी बाकी सब कुछ को झकझोरते हुए मटमैली आंधी की तरह मन के अंतरिक्ष में फैलती जाती है। लेखन आपके जीवन के पुराने ढर्रे और प्रिय चीजों की कुर्बानी मांगने लगता है। दे सकते हो तो दो और अंधरे में टटोलते, गिरते आगे बढ़ो वरना अपनी डेढ़ किताबों और अपराधबोध के साथ गाल पर उंगली धरे राइटरनुमा पोज देते हुए फोटू खिंचाते रहो। वैसे जियो जैसे कोई प्रेमी बाप के दबाव में दहेज लेकर अनजान सुशील कन्या के साथ जीता है।

लिखना एक रहस्यमय काम है, इसलिए उसके बारे में बात करने वाला अक्सर पांच अंधों द्वारा हाथी के वर्णन जैसी मुग्धकारी अबोधता में भटकने लगता है। अगर अपने लेखन पर बोलना हो तो मजा बहुत आता है, लेकिन सामने वाले के हाथ कुछ नहीं लगता। ये दुनिया आदमी के भीतर कैसी अनुभूतियों के रूप में दर्ज हुई है, इसे कागज पर उतार पाना ही लेखन है। बाकी सब सलमे सितारे हैं। दिक्कत यह है कि जिंदगी का चलन लेखन के खिलाफ है। बचपन से हमें सच्चाइयों को भुलाकर खुद को ऐसे व्यक्त करना सिखाया जाता है, जो समाज में सर्वाइवल के लिए जरूरी होता है। इस प्रैक्टिस के कारण हम खुद को ऐसे तहखाने में बंद कर देते हैं, जहां से पूरे जीवन के दौरान पश्चाताप, विस्मय और मृत्यु के एकांत में सिर्फ कुछ घंटों के लिए बाहर आ पाते हैं।

मेरे मन में एक लंबी अंधेरी सुरंग है, जिसकी एक दीवार कल्पना और एक दीवार स्मृति से बनी है। सब कुछ इस सुरंग से दिल की धड़कन की लय पर गुजरता है और दूसरे छोर पर बिल्कुल नए रंग रूप में प्रकट होता है। इसी प्रवाह में से मैं लिखने का एक विषय चुनता हूं। अगर विषय में इतना दम है कि वह मेरी इच्छा शक्ति का स्विच ऑन कर काम पर लगा सके, तो लिखा जाता है वरना वापस उसी सुरंग में समा जाता है।

जब अलहदापन के कारण अच्छे विषय का दम घुटने लगता है, तो वह फंतासी की लंबी रील में बदलकर सोने नहीं देता। अक्सर एक बिंब आता है कि मैंने एक पूरा उपन्यास मन से सरकाकर हाथ की उंगलियों के पोरों पर इकट्ठा कर लिया है। एक योगी की एकाग्रता से खुद को संयोजित कर मैं कंप्यूटर के की-बोर्ड पर पंखों से फड़फड़ाते हाथ सिर्फ दो बार रखता हूं और सामने स्क्रीन पर अक्षर मधुमक्खियों की तरह उड़ते हैं, जो जरा सी देर में किताब में बदल जाते हैं। जिस विषय के साथ ऐसा होता है, मैं समझ जाता हूं- यह कभी नहीं लिखा जाएगा।

अनिल यादव

- उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में 9 जनवरी 1967 को जन्मे
- घुमंतू, पत्रकार, लेखक
- बाइस सालों तक हिन्दी-अंग्रेजी अखबारों में रिपोर्टरी
- एक कहानियों की किताब- 'नगर वधुएं अखबार नहीं पढ़तीं'
- संप्रति- स्वतंत्र लेखन

आत्मकथ्यः

किसी की मुस्कराहटों पे हो निसार
किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार
किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार
जीना इसी का नाम है...

... शैलेंद्र का लिखा, फिल्म अनाड़ी (1959) का गीत

थाप
पहली किताब

प्रवीण कुमार

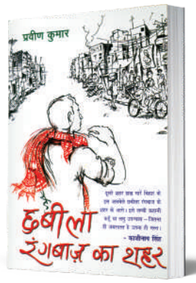

छबीला रंगबाज़ का शहर

**अर्थहीन को अर्थ देना,
अनकहे जीवन को कहना ही
इनकी पहचान हैं...**

निर्णायक वक्तव्य

सुधीश पचौरी
सुप्रसिद्ध आलोचक

यूं तो 'छबीला रंगबाज का शहर' में मात्र चार कहानियां हैं, लेकिन इन कहानियों की भाषा समकालीन कहानियों में जबर्दस्ती लाई जाती हिंगलिशी स्मार्टनेस को बेकार कर अपनी जगह बनाती है।

आम हिंदी लेखक समाज और पाठकों को 'पेट्रनाइज' करने के इरादे से कहानियां लिखते हैं मानो कि बदलते मानवीय संबंधों की जटिलताओं को वही बता सकते हों। समकालीन कथाकारों का मुहावरा आज भी किसी 'मेटा-नैरेटिव' या किसी किस्म की 'मुक्ति के वृत्तांत' की तलाश में भटकता है, जबकि अब कोई 'मेटा-नैरेटिव' नहीं बचा है, न 'मुक्ति' के कोई आख्यान बचे हैं। जो बचा है, वह एक तुच्छ सा लस्टम-पस्टम जीवन बचा है, जिसमें लंपटता ही 'नैतिक' बना दी गई है।

पिछले बीस-तीस बरस में हमारे समाज का लंपटीकरण किया गया है, लेकिन इस लंपटीकृत समाज में कुछ इंसानियत बची है, इस मर्म को सिर्फ प्रवीण कुमार ने ही जाना है। इसीलिए उनकी ये कहानियां 'लोअर मिडिल क्लास' की न होकर हाशियों पर फेंक दिए गए जीवन की कहानियां हैं। ये कहानियां इसी तुच्छ और लंपट जगत को एक अनबोझिल, चुहल भरी उपहास-वक्र भाषा से जीवंत बनाती हैं। इस तलछटिया जीवन के धुर्रे उड़ाकर ही उसमें मानी और उनके साथ एंपथी पैदा की जा सकती है।

शहरी स्पेस में नागरिक विकास की जगह पैदा कर दी गई लंपटता, एनजीओ किस्म की हमदर्दी का दिखावा करने की जगह एक बेलौस और बेरहम उपहास वक्रता कहानियों को किसी भी क्षण बोझिल नहीं होने देती। ये कहानियां हिंदी को कुछ एकदम नए और यादगार चरित्र देती हैं। इन चरित्रों के स्पेस को जिस अंदाज से ये खोलती चलती हैं, वह हिंदी में एकदम नया है।

सबसे बड़ी बात है, बहुत सी मामूली और बेमतलब जिंदगियों का एकदम निर्भावुक और बेलौस बखान! यह शैली न इस तलछटिए जीवन को 'हीन' करती है, न बनते चरित्रों को 'हेट' करती है, बल्कि स्थितियों और चरित्रों को एकदम पास जाकर खोलती है। तीखा और अंतरंग किस्म का ऑब्जर्वेशन अद्वितीय है। ये चरित्र अपने मानी खुद हैं और यही चीज उनको हमारे लिए अनिवार्य बनाती है। हर चरित्र नाना अंतर्विरोधों का पुलिंदा है। चाहे 'छबीला रंगबाज का शहर' का छबीला हो या ऋषभ या 'लादेन ओझा की हसरतें' के नायक ओझा जी हों, या 'नया जफरनामा' का नायक 'मौजू' या 'चिल्लैक्स लीलाधरी' का ए.बी., सभी छोटे शहरों में अपनी अपनी जिदंगी के न्यूनतम स्पेस के लिए नित्य जूझते चरित्र हैं।

छोटे-छोटे शहरों का यह तलछटिया जीवन सुसंगत आधुनिकतावादी तर्कों से नहीं चलता। शिष्ट और कांइयांपन की नागरिक किस्म की शिष्ट धूर्तताओं से अलग यह सबाल्टर्न किस्म का निचला जीवन परस्पर निर्भरता के साझे और अबूझ तर्कों से चलता है। हर जीवन अपना मानी आप है, जिसकी अपनी अदा, अपने आदर्श, अपने सपने और अपनी हेकड़ी और जिदें यानी कमिटमेंट हैं। अपने निरादर्श में भी यह जीवन भव्य है। उसकी अपनी शोभा है।

इन कहानियों का पढ़ते हुए गोर्की के नाटक 'लोअर डेप्थ' की याद छू जाती है, जबकि यह एकदम डेप्थलैसनैस (गहनताहीनता) वाला उत्तर आधुनिक समय है। ये कहानियां इसी 'डेप्थलैसनैस' (गहनताहीनता) में 'डैप्थ' गहनता गढ़ती हैं। अर्थहीन को अर्थ देना, अनकहे जीवन को कहना ही इनकी पहचान हैं। ये चरित्र कहीं और नहीं मिलने वाले!

लगभग हर कहानी में एक साझा (कंपोजिट) जीवन है, जिसे लोग अपने तमाम हाशिएपन के साथ जीते हैं। लेखक की नजर तेजी से बदलते अर्बन स्पेस पर है, जिसे किसी भी तरह की यथार्थवादी शैली से नहीं कहा जा सकता था। उसके लिए निर्भावुक किस्म का उपहास चाहिए था ताकि उसका आदर्शीकरण न हो लेकिन उसका दर्द पाठक को अवश्य महसूस हो! लेखक की चपल भाषा जीवन की तमाम किस्म की विडंबनाओं (आयरनीज) और अंतर्विरोधों को अपने नुक्कड़िया अंदाज में कुछ इस तरह खोलती हैं, मानो लेखक नुक्कड़ पर बैठा हुआ इस स्पेस को देख रहा हो और जी भी रहा हो।

यह संकलन समकालीन हिंदी कथा लेखन को एक नया मोड़ देता है। जो समकालीन कहानियां गांव में या जंगलों में क्रांति कराने की आदी हो चलीं थी, जो यथार्थ के नाम पर अतिरंजित रुमानियत को रिपीट कर रही थीं अथवा तो मारकेस या बोरखेस की भोंडी नकल बनकर जाली 'जादुई यथार्थ' को असली बताकर जिए जा रही थीं। इन कहानियों ने उनको 'व्यर्थ' कर दिया है। और कहानी को समकालीन विडंबनाओं के विक्टिम जीवन से जोड़ दिया है। यह हिंदी कहानियों में 'उत्तर यथार्थवाद' की शुरुआत जैसा है। इस कथा संकलन के साथ ही हिंदी में आत्म-व्यंग्यपरक त्रासद कथाओं की वापसी हुई है!

अमर उजाला शब्द सम्मान 2018

सच को बतकही का जामा

ज़िंदगी की शुरूआत बिहार के एक छोटे से शहर से हुई पर पैतृक गांव में लगातार आना-जाना बना रहा। यहीं से पहली बार लोगो की दो दशाएं, दो दिशाएं, दो मौसम और दो तरह के देस (देश नहीं) वाली स्थिति और अनंत अर्थबोध वाली भाषा का संज्ञान हुआ। ये सारी चीजें एक-दूसरे को एक तीखे कोण पर काटती हुई महसूस हुईं। नौवीं कक्षा में दिल्ली और वह भी सेंट्रल दिल्ली में आगमन के बाद एक और दशा, दिशा, मौसम, देस और भाषा का दरवाजा खुला। पर इस परतदार अनुभव प्रक्रिया ने अभी किसी रचना को जना नहीं था। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दू कॉलेज से हिन्दी साहित्य में शिक्षा-दीक्षा ने 'सिविल सर्वेंट' की जगह शिक्षक कर्म जैसा कुछ करने की ललक पैदा की और पीएचडी में दाखिला ले लिया। साहित्य से संवाद अब जितना घनिष्ठ होता गया भाषा और सत्य के सापेक्षिक संबंधों की अनगढ़ अर्थध्वनियों को सुनने-कहने का शौक चर्राने लगा, जिसे कुछ हद तक आरंभ में साहित्य के गपोड़ साथियों के साथ घंटों चलने वाली 'गप्प' ने संभाला, पर लिखना फिर भी शुरू नहीं हुआ।

लेकिन अब कहते-सुनते और देखते कई सारे बिंब, घटनाएं और दृश्य अपनी आवृत्ति से परेशान करने लगे। अनायास धीरे-धीरे कुछ चीजें कागज पर उतरने लगीं और वह कहानी का रूप धर ले गईं। नयापथ, हंस और तद्भव जैसी पत्रिकाओं में कहानियों के छपने और आश्चर्यजनक ढंग से लोकप्रिय होने ने एक भरोसा दिया कि जटिल से जटिलतम हो रहे इस समय को विशिष्ट कथावस्तु और भाषा में बांधा जा सकता है। हालांकि कहानी लिखने के पीछे कोई तथाकथित 'महान' स्वप्न नहीं रहा, पर यह सपना जरूर पलता रहा है कि इस समय को अपने हिसाब से बतकही में 'डिकोड' करते रहना है। वैसे यह भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं। सच को बतकही का जामा पहनाकर कहानियां सदियों से सफर करती रही हैं। बतकही का जामा ही सच को कलात्मक अभिव्यक्ति देता है, इसी का एक ताकतवर रूप कहानी विधा है। मेरी कहानियों पर अंतिम फ़ैसला वही करेंगे, जो इन्हें पढ़ेंगे। 'कहन' की विराट भारतीय कथा परंपरा में एक अंश का भी दशमांश जोड़ पाऊं, तो मान लूंगा कि लिखना सफल रहा, परंतु यह स्वीकार करने से मुझे थोड़ा-सा भी गुरेज नहीं इन कहानियों की जो कथाभाषा है, उसके निर्माण में साहित्यिक-ग्रंथों, गुरुजनों की तुलना में उन बतकहीबाजों और गपोड़ियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है जिनकी साहित्यिक-गैरसाहित्यिक शोहबत में कुछ भाषाकस्सी सीख पाया।

प्रवीण कुमार

- **जन्म :** 1982 आरा, बिहार
- रुझान से इतिहास, अवधारणा और साहित्य के गंभीर शोधार्थी डॉ. प्रवीण कुमार की शिक्षा हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय से संपन्न हुई। हिन्दी की पत्रिकाओं और अखबारों में इनके विचारोत्तेजक लेख विवाद और प्रशंसा के विषय रहे हैं।
- 'नया जफरनामा', 'लादेन ओझा की हसरतें' और तद्भव में आई लम्बी कहानी 'छबीला रंगबाज का शहर' से कहानी विधा में मजबूत उपस्थिति दर्ज करा चुके हैं। हंस में छपी लंबी कहानी 'चिल्लैक्स लीलाधारी' लंबे समय तक भाषायी प्रयोग के नमूने के रूप में चर्चित। अगली लंबी कहानी 'एक राजा था जो सीताफल से डरता था' तद्भव के आगामी अंक में आ रही है।
- **सम्प्रति :** सहायक प्रोफेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, फोन - 8800904606

भाषाबंधु
श्रेष्ठ अनुवाद

गोरख थोरात

देखणी
मराठी मूलकृति : भालचंद नेमाड़े

जाहिर है कि इनको पढ़ते हुए हम मराठी भाषा भूमि का एक स्पर्श पाते हैं...

निर्णायक वक्तव्य

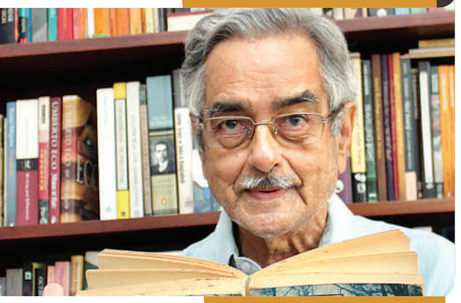

प्रयाग शुक्ल
प्रसिद्ध समीक्षक-कवि

अनुवाद, दो भाषाओं को एक साथ ही खंगालने का काम है, जो कुछ दुष्कर जरूर है, पर प्रीतिकर भी कम नहीं है, बशर्ते उसमें एक रचनात्मक तत्व हो और अनुवाद करने का आनंद भी उठाया गया हो। इस दृष्टि से देखें तो ख्यातिप्राप्त मराठी लेखक-कवि ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता भालचंद्र नेमाड़े के कविता-संग्रह 'देखणी' का जो अनुवाद गोरख थोरात ने किया है, वह प्रशंसनीय है। इसमें अनुवादक की निष्ठा और लगन तो परिलक्षित है ही, वह रचनात्मक संघर्ष भी शामिल है, जो ऐसे किसी अनुवाद में और भी अनिवार्य हो उठता है।

नेमाड़े की कविता की बुनावट अत्यंत गझिन है। शब्द-बिंब और उनसे उभरने वाले रूपांकन, न जाने कितने प्रसंगों और ध्वनियों को समेटे हुए हैं और इन्हें लयात्मक ढंग से अनुवाद में भी उतारना आसान काम नहीं था, जिसे थोरात ने संभव किया है। मराठी में, कविता में, विराम चिन्हों का चलन नहीं है, इस नाते भी पंक्ति-दर पंक्ति एक प्रवाह बना रहता है। थोरात ने उस प्रवाह का भी निर्वाह बखूबी किया है। उदाहरण के लिए 'विदाई' शीर्षक कविता की ये पंक्तियां देखिए : **'विश्व-अनुभूति के इस गरजते समुद्र फेन में बेकार न जाए हमारी जिंदगी का रमणीय सतरंगी बुलबुला, और न ढले ये भोर के ओढ़े घने दरख्तों से झांकते रोशन सूर्य इस अनमने विनाश तत्व के झपट्टे में गमकती रहे बेमौसम महामेघ की उड़ाई भूमि की उग्र गंधी धूल संचित हो घर भर कर जीने का समृद्ध कबाड़।'**

जाहिर है कि इनको पढ़ते हुए हम मराठी भाषा भूमि का एक स्पर्श पाते हैं और हिंदी की उस शक्ति का परिचय भी, जो अपने में, अपनी सहयोगी भारतीय भाषाओं में से, बहुत कुछ को समा लेने की क्षमता रखती है। नेमाड़े की कविता के बारे में प्रकाश देशपांडे केसकर की एक बड़ी सटीक टिप्पणी पुस्तक के ब्लर्ब में दी हुई है : 'नेमाड़े जी की कविता मृत्यु के एहसास से ध्वनित विनाश तत्व को अनदेखा कर कोरे आशावाद की तरफ नहीं झुकती। वह महानगरीय कविता की तरफ मृत्यु की प्रभुसत्ता को तटस्थता से स्वीकार नहीं करती, बल्कि इस प्रभुसत्ता को चुनौती देने वाले जीवनदायी प्रेरणाओं के संदर्भ में मजबूती से खड़े करती है।'

इस संग्रह में नेमाड़े की अपेक्षाकृत कुछ लंबी कविताएं हैं, 'सन् 1966' (सात पृष्ठों की), 'विस्थापन का गीत' (तीन पृष्ठों की) और 'दादी' (ढाई पृष्ठों की)- ये सभी अपूर्व कविताएं हैं और इन्हें बिना किसी लड़खड़ाहट के हिंदी में लाने का श्रेय भी हम थोरात को दे सकते हैं।

इस संग्रह के महत्व को कई रूपों में रेखांकित किया जा सकता है : नेमाड़े के उपन्यास 'कोसला', 'झूल' और 'हिन्दू' तो हिन्दी में उपलब्ध रहे हैं। ('झूल' और 'हिन्दू' के अनुवादक भी थोरात ही हैं) पर, उनकी कविताएं हिन्दी के पाठकों से कुछ ओझल ही रही हैं। इन्हें हिन्दी में पाकर और नेमाड़े जैसे कवि-लेखक की कविता से सम्यक परिचय पाकर, हिन्दी का कविता प्रेमी पाठक निश्चय ही प्रसन्न होगा। नेमाड़े अपनी कविता में ठेठ बोलचाल की और संस्कृतनिष्ठ मराठी के साथ अरबी शब्दों का इस्तेमाल भी करते हैं, उर्दू का भी - और इन सबसे एक खास तरह का ध्वनिमूलक (सांगीतिक) असर भी पैदा करते हैं।

'देखणी', कोंकण में पुर्तगीज़ों के असर से जन्मे लोकनृत्य का नाम है और इसका एक अर्थ, सौंदर्य या सौंदर्यशीलता भी है। नेमाड़े की कविता के सौंदर्य, वृद्धि वैभव, विडम्बनात्मक और मारक बोध के लिए 'देखणी' पढ़ना जरूरी है। उल्लेखनीय है कि उनके कुछ और अनुवाद इस बीच देखने में आए हैं। मसलन 'समास'-17 (संपादक - उदयन वाजपेयी) में उन्होंने मराठी के सुप्रसिद्ध कला-समीक्षक सुधाकर यादव की कुछ प्रमुख भारतीय कलाकारों पर की गई विलक्षण टिप्पणियों का अनुवाद भी बहुत सधे ढंग से किया है।

मुझे पूरी उम्मीद है कि थोरात को 'भाषा बंधु' पुरस्कार कई रूपों में फलीभूत होगा : एक प्रेरक का काम करेगा और उनके द्वारा अनूदित कृतियों को एक बड़े पाठक वर्ग तक ले जाएगा। स्वयं इस 'भाषा बंधु' पुरस्कार की भी मैं सराहना करता हूं जो भाषाओं के बीच पुल तो बनाएगा ही, अनुवाद कार्य के महत्व को भी रेखांकित करता रहेगा।

कोई भी अनुवादक कभी पूरी तरह मुकम्मल नहीं माना जाता। फिर, पीढ़ियां भी एक नए बोध के साथ किसी पसंदीदा कृति को, एक नई भाषा में पढ़ना चाहती हैं। मूलकृति वही रहती है, पर 'अनुवाद' के कई रूप, कई संस्करण संभव होते हैं, लेकिन अनुवाद की दुनिया में किसी कृति का पहला और दूर तक सार्थक अनुवाद अपना महत्व रखता है। इस नाते भी 'देखणी' का यह पहला अनुवाद महत्वपूर्ण है।

अमर उजाला शब्द सम्मान 2018

एक सांस्कृतिक कर्म में निरत होते हुए

कवि श्री भालचंद्र नेमाड़े का आग्रह होता है कि कविता में रोजमर्रा की जिंदगी का अभिस्रावण या आसवन होना चाहिए। नेमाड़े ऐसे साहित्यकार हैं, जो उपन्यास से कथा नहीं, बल्कि विचार प्रस्तुत करते हैं और कविताओं में कथात्मक किस्म के एक विशाल परिदृश्य को साकार करते हैं। ऐसा परिदृश्य समकालीन मराठी कविता और शायद हिन्दी में भी नजर नहीं आता। नेमाड़े की कविता दीर्घ या विस्तृत नहीं है, परंतु आशय की दृष्टि से अत्यंत गहरी हैं। उनकी भाषा इतनी सटीक होती है कि कहीं भी दरार नजर नहीं आती। एक भी शब्द इधर से उधर नहीं कर सकते। उसमें प्रकट होने वाले भाव स्त्री-संस्कृति, भारतीय मराठी संस्कृति, और कुल मिलाकर एक प्रदेश विशेष पट्टी का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके जरिए भारतीय संस्कृति का एक विशाल पट अपनी समग्रता के साथ उभरता जाता है।

अनुवाद कर्म एक सांस्कृतिक कार्य है, जिसमें अनुवादक दूत बनकर दो भाषिक संस्कृतियों के बीच की अजनबीपन की खाई को पाटने का प्रयास करता है, परंतु अनुवादक केवल शब्दानुवाद या भावानुवाद से काम नहीं चला सकता। इन दोनों के सामंजस्य पर और लक्ष्य भाषा की प्रकृति पर भी उसे ध्यान देना होता है। उसका हमेशा यह प्रयास होता है कि स्रोत सामग्री का न तो कोई शब्द छूट पाए और न ही कोई भाव, क्योंकि स्रोत भाषा के आशय को समकक्षता के साथ लक्ष्य भाषा में पहुंचाना अनुवादक का दायित्व है। स्रोत आशय के साथ-साथ स्रोत शैली भी लक्ष्य भाषा में आ जाए, तो सोने पे सुहागा। परंतु ख्याल रहे कि स्रोत भाषा की संस्कृति से किसी प्रकार छेड़छाड़ न हो और न ही वह विकृत रूप में लक्ष्य भाषा में पहुंचे, क्योंकि अनुवाद केवल साहित्य का नहीं होता, बल्कि स्रोत भाषा की संस्कृति का भी होता है।

भाषा में प्रवाहशीलता अनुवाद का सबसे बड़ा गुण है। यदि स्रोत भाषा अनुवादक की मातृभाषा है तो अनुवाद मातृभाषा से प्रभावित होने की संभावना अधिक होती है। इस प्रभाव को पूरी तरह से हटा देना भी ठीक नहीं है, परंतु अनुवाद लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप हो, इसलिए उसे धुंधला जरूर करना चाहिए। अनुवाद पूरा होने के उपरांत कुछ समय के लिए उसे अलग रखकर इस बीच लक्ष्य भाषा की अच्छी-अच्छी रचनाएं पढ़ें, तो अनुवादक का इस रचना की दृष्टि से ज़रूरी शब्द-भंडार बढ़ जाता है और मातृभाषा का प्रभाव भी धुंधला होने में सहायता होती है। लक्ष्य भाषा की सरलता, सुबोधता, स्पष्टता ही मेरे विचार से अनुवाद की सफलता का रहस्य है। श्री भालचंद्र नेमाड़े के 'हिन्दू : जीने का समृद्ध कबाड़' उपन्यास और 'देखणी' कविता संग्रह के अनुवाद में मेरी यही भूमिका रही है।

गोरख थोरात

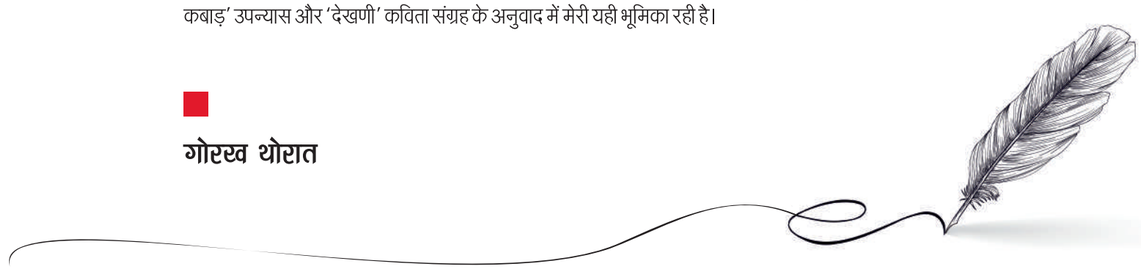

- संगमनेर (अहमदनगर) महाराष्ट्र में 1 जून, 1969 को जन्मे गोरख थोरात एम.ए., पीएच.डी. (पुणे विश्वविद्यालय) हैं।
- **अनुवाद कार्य :** भालचंद्र नेमाड़े के मराठी उपन्यास 'हिन्दू-जगण्याची समृद्ध अडगळ' का 'हिन्दू-जीने का समृद्ध कबाड़' शीर्षक से हिन्दी अनुवाद। भालचंद्र नेमाड़े के मराठी कविता संग्रह 'देखणी' का इसी शीर्षक से हिन्दी अनुवाद। अभिराम भड़कमकर के मराठी उपन्यास 'असा बालगंधर्व' का 'बालगंधर्व' शीर्षक से हिन्दी अनुवाद। प्रेम प्रकाश द्वारा संपादित तथा सिंधी से हिन्दी में अनूदित कहानी संग्रह 'समकालीन सिंधी कथा' का हिन्दी से मराठी अनुवाद। भालचंद्र नेमाड़े के मराठी उपन्यास 'झूल' का इसी शीर्षक से हिन्दी अनुवाद। राजन गवस के मराठी उपन्यास 'भंडार भोग' का इसी शीर्षक से हिन्दी अनुवाद।
- **आलोचना:** चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन, हिन्दी साहित्य के चर्चित आयाम, प्रेमचंद तथा अण्णाभाऊ साठे के उपन्यासों में नारी-चेतना, प्रयोजनमूलक हिन्दी
- **पुरस्कार:** महाराष्ट्र राज्य हिन्दी अकादमी द्वारा 2016 में मामा वरेरकर अनुवाद पुरस्कार
- **संप्रति:** असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सर परशुरामभाऊ महाविद्यालय, पुणे - 411030 (महा.), **दूरभाष:** 09403185097

अमर उजाला

चीन में सुलहवार्ता टूटने का खतरा पैदा

18 अप्रैल, 1948 को प्रकाशित अमर उजाला की पहली प्रति

अमर उजाला देश के अग्रणी दैनिक समाचार पत्रों में से है। आजादी के एक साल बाद 18 अप्रैल, 1948 को उत्तर प्रदेश के शहर आगरा से पहली बार प्रकाशित हुआ। वर्तमान में पूरे उत्तरी भारत के लोकप्रिय अमर उजाला के संस्थापक डोरीलाल अग्रवाल तथा मुरारीलाल माहेश्वरी थे। अमर उजाला के सात राज्यों और एक संघ राज्य क्षेत्र में कुल 20 संस्करण हैं। यह समाचार पत्र 179 जिलों में फैला हुआ है। IRS- 2017 के सर्वे के मुताबिक 4.65 करोड़ की कुल रीडरशिप के साथ ही यह देश का तीसरा सबसे बड़ा अखबार है।

अलंकरण प्रतीक चिह्न

अनुकृति : गंगा

सेन वंश, 12वीं शताब्दी

राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में संग्रहीत

अमर उजाला फाउंडेशन

सी 21-22, सेक्टर-59, नोएडा-201301

shabdsamman.amarujala.com

shabdsamman@amarujala.com

facebook.com/AUShabdSamman shabdsamman https://www.instagram.com/shabdsamman/